चौथी का जोड़ा

सहदरी के चौके पर आज फिर साफ़-सुथरी जाजम बिछी थी। टूटी-फूटी खपरैल की झिरियों में से धूप के आड़े-तिरछे क़तले पूरे दालान में बिखरे हुए थे। मुहल्ले-टोले की औरतें खामोश और सहमी हुई-सी बैठी हुई थीं; जैसे कोई बड़ी वारदात होनेवाली हो। माँओं ने बच्चे छाती से लगा लिये थे। कभी-कभी कोई मुनहन्नी-सा चरचरम बच्चा रसद की कमी की दुहाई देकर चिल्ला उठता।

"नायँ-नायँ मेरे लाल !" दुबली-पतली माँ उसे अपने घुटने पर लिटाकर यों हिलाती, जैसे धान-मिले चावल सूप में फटक रही हो और बच्चा हुंकारे भरकर ख़ामोश हो जाता।

आज कितनी आस-भरी निगाहें कुबरा की माँ के मुतफ़क्किर चेहरे को तक रही थीं। छोटे अर्ज़ की टूल के दो पाट तो जोड़ लिये गये, मगर अभी सफ़ेद गज़ी का निशान ब्योंतने की किसी को हिम्मत न पड़ती थी। काट-छाँट के मामले में कुबरा की माँ का मरतबा बहुत ऊँचा था। उनके सूखे-सूखे हाथों ने न जाने कितने जहेज़ सँवारे थे, कितने छठी-छूछक तैयार किये थे और कितने ही कफ़न ब्योंते थे। जहाँ कहीं मुहल्ले में कपड़ा कम पड़ जाता और लाख जतन पर भी ब्योंत न बैठती, कुबरा की माँ के पास केस लाया जाता। कुबरा की माँ कपड़े की कान निकालतीं, कलफ़ तोड़तीं, कभी तिकोन बनातीं, कभी चौखुँटा करतीं और दिल-ही-दिल में कैंची चलाकर आँखों से नाप-तोलकर मुस्करा उठतीं।

"आस्तीन और घेर तो निकल आयेगा, गिरेबान के लिए कतरन मेरी बक़ची से ले लो।" और मुश्किल आसान हो जाती। कपड़ा तराशकर वो कतरनों की पिण्डी बनाकर पकड़ा देतीं।

पर आज तो सफ़ेद गज़ी का टुकड़ा बहुत ही छोटा था और सबको यकीन था कि आज तो कुबरा की माँ की नाप-तोल हार जायेगी। तभी तो सब दम साधे उनका मुँह ताक रही थीं। कुबरा की माँ के पुर-इसतक़लाल चेहरे पर फ़िक्र की कोई शक्ल न थी। चार गज़ गज़ी के टुकड़े को वो निगाहों से ब्योंत रही थीं। लाल टूल का अक्स उनके नीलगूँ ज़र्द चेहरे पर शफ़क की तरह फूट रहा था। वो उदास-उदास गहरी झुर्रियाँ अँधेरी घटाओं की तरह एकदम उजागर हो गयीं, जैसे घने जंगल में आग भड़क उठी हो ! और उन्होंने मुस्कराकर कैंची उठायी।

मुहल्लेवालों के जमघटे से एक लम्बी इत्मीनान की साँस उभरी। गोद के बच्चे भी ठसक दिये गये। चील-जैसी निगाहोंवाली कुँवारियों ने लपाझप सुई के नाकों में डोरे पिरोये। नयी ब्याही दुल्हनों ने अंगुश्ताने पहन लिये। कुबरा की माँ की कैंची चल पड़ी थी।

सहदरी के आख़िरी कोने में पलँगड़ी पर हमीदा पैर लटकाये, हथेली पर ठोड़ी रखे दूर कुछ सोच रही थी।

दोपहर का खाना निपटाकर इसी तरह बी-अम्माँ सहदरी की चौकी पर जा बैठती हैं और बक़ची खोलकर रंग-बिरंगे कपड़ों का जाल बिखेर दिया करती

हैं। कूँडी के पास बैठी बरतन माँजती हुई कुबरा कनखियों से उन लाल कपड़ों को देखती तो एक सुर्ख़ छिपकिली-सी उसके ज़र्दी मायल मटियाले रंग में लपक उठती। रूपहली कटोरियों के जाल जब पोले-पोले हाथों से खोलकर अपने ज़ानुओं पर फैलाती तो उसका मुरझाया हुआ चेहरा एक अजीब अरमान-भरी रौशनी से जगमगा उठता। गहरी सन्दूकों-जैसी शिकनों पर कटोरियों का अक्स नन्हीं-नन्हीं मशालों की तरह जगमगाने लगता। हर टाँके पर ज़री का काम हिलता और मशालें कँपकँपा उठतीं।

याद नहीं कब इस शबनमी दुपट्टे के बने-टके तैयार हुए और गाज़ी के भारी कब्र-जैसे सन्दूक की तह में डूब गये। कटोरियों के जाल धुँधला गये। गंगा-जमनी किरनें मान्द पड़ गयीं। तूली के लच्छे उदास हो गये। मगर कुबरा की बारात न आयी। जब एक जोड़ा पुराना हुआ जाता तो उसे चाले का जोड़ा कहकर सेंत दिया जाता और फिर एक नये जोड़े के साथ नयी उम्मीदों का इफ़ताह (शुरुआत) हो जाता। बड़ी छानबीन के बाद नयी दुल्हन छाँटी जाती। सहदरी के चौके पर साफ़-सुथरी जाजम बिछती। मुहल्ले की औरतें हाथ में पानदान और बगलों में बच्चे दबाये झाँझें बजाती आन पहुँचतीं।"

"छोटे कपड़े की गोट तो उतर आयेगी, पर बच्चों का कपड़ा न निकलेगा।"

"लो बुआ लो, और सुनो। क्या निगोड़ी भारी टूल की चूलें पड़ेंगी?" और फिर सबके चेहरे फिक्रमन्द हो जाते। कुबरा की माँ खामोश कीमियागर की तरह आँखों के फीते से तूलो-अर्ज़ नापतीं और बीवियाँ आपस में छोटे कपड़े के मुताल्लिक़ खुसर-पुसर करके क़हक़हे लगातीं। ऐसे में कोई मनचली कोई सुहाग या बन्ना छेड़ देती, कोई और चौर हाथ आगेवाली समधनों को गालियाँ सुनाने लगती, बेहूदा गन्दे मज़ाक और चुहलें शुरू हो जातीं। ऐसे मौक़ों पर कुँवारी बालियों को सहदरी से दूर सिर ढाँककर खपरैल में बैठने का हुक्म दे दिया जाता और जब कोई नया क़हक़हा सहदरी से उभरता तो बेचारियाँ एक ठण्डी साँस भरकर रह जातीं। अल्लाह! ये क़हक़हे उन्हें खुद कब नसीब होंगे? इस चहल-पहल से दूर कुबरा शर्म की मारी मच्छरोंवाली कोठरी में सिर झुकाये बैठी रहती है। इतने में कतर-ब्योंत निहायत नाज़ुक मरहले पर पहुँच जाती। कोई कली उल्टी कट जाती और उसके साथ बीवियों की मत भी कट जाती। कुबरा सहमकर दरवाज़े की आड़ से झाँकती।

यही तो मुश्किल थी, कोई जोड़ा अल्लाह-मारा चैन से न सिलने पाया। जो कली उल्टी कट जाय तो जान लो, नाइन की लगायी हुई बात में ज़रूर कोई अड़ंगा लगेगा। या तो दूल्हा की कोई दाश्तः[1] निकल आयेगी या उसकी माँ ठोस कड़ों का अड़ंगा बाँधेगी। जो गोट में कान आ जाय तो समझ लो या तो महर पर बात टूटेगी या भरत के पायों के पलँग पर झगड़ा होगा। चौथी के जोड़े का शगुन बड़ा नाज़ुक होता है। बी-अम्माँ की सारी मश्शाक़ी और सुघड़ापा धरा रह जाता। न जाने ऐन वक़्त पर क्या हो जाता कि धनिया बराबर तूल पकड़ जाती। बिस्मिल्लाह के ज़ोर से सुघड़ माँ ने जहेज़ जोड़ना शुरू कर दिया था। ज़रा-सी कतर भी बची तो तेलदानी या शीशी का गिलाफ सीकर धनुक गोकरू से सँवारकर रख देतीं। लड़की का क्या है, खीरे ककड़ी की तरह बढ़ती है। जो बारात आ गयी तो यही सलीक़ा काम आयेगा।

और जब से अब्बा गुज़रे, सलीक़े का भी दम फूल गया। हमीदा को एकदम अपने अब्बा याद आ गये। अब्बा कितने दुबले-पतले, लम्बे, जैसे मुहर्रम का अलम! एक बार झुक जाते तो सीधे खड़े होना दुश्वार था। सुबह-ही-सुबह उठकर नीम की मिस्वाक (दातुन) तोड़ लेते और हमीदा को घुटने पर बैठाकर न जाने क्या सोचा करते। फिर सोचते-सोचते नीम की मिस्वाक का कोई फूँसड़ा हलक़ में चला जाता और वे खाँसते ही चले जाते। हमीदा बिगड़कर उनकी गोद से उतर जाती। खाँसी के धक्कों से यूँ हिल-हिल जाना उसे कतई पसन्द नहीं था। उसके नन्हें-से गुस्से पर वे और हँसते और खाँसी सीने में बेतरह उलझती, जैसे गरदन-कटे कबूतर फड़फड़ा रहे हों। फिर बी-अम्माँ आकर उन्हें सहारा देतीं। पीठ पर धपधप हाथ मारतीं।

"तौबा है, ऐसी भी क्या हँसी।"

अच्छू के दबाव से सुर्ख आँखें ऊपर उठाकर अब्बा बेकसी से मुस्कराते। खाँसी तो रुक जाती, मगर देर तक बैठे हाँफा करते।

"कुछ दवा-दारू क्यों नहीं करते? कितनी बार कहा तुमसे।"

"बड़े शफ़ाख़ाने का डाक्टर कहता है, सूइयाँ लगवाओ और रोज़ तीन पाव दूध और आधी छटाँक मक्खन।"

"ऐ ख़ाक पड़े इन डाक्टरों की सूरत पर! भला एक तो खाँसी, ऊपर से

---

1. रखैल

चिकनाई ! बलग़म न पैदा कर देगी ? हकीम को दिखाओ किसी !"

"दिखाऊँगा।" अब्बा हुक्का गुड़गुड़ाते और फिर अच्छू लगता।

"आग लगे इस मुए हुक्के को ! इसी ने तो ये खाँसी लगायी है। जवान बेटी की तरफ भी देखते हो आँख उठाकर ?"

और अब अब्बा कुबरा की जवानी की तरफ़ रहम-तलब निगाहों से देखते। कुबरा जवान थी। कौन कहता था जवान थी ? वो तो जैसे बिस्मिल्लाह[1] के दिन से ही अपनी जवानी की आमद की सुनावनी सुनकर ठिठककर रह गयी थी। न जाने कैसी जवानी आयी थी, कि न तो उसकी आँखों में किरनें नाचीं न उसके रुख़सारों पर ज़ुल्फें परेशान हुईं, न उसके सीने पर तूफान उठे और न कभी उसने सावन-भादों की घटाओं से मचल-मचलकर प्रीतम या साजन माँगे। वो झुकी-झुकी, सहमी-सहमी जवानी जो न जाने कब दबे पाँव उस पर रेंग आयी, वैसे ही चुपचाप न जाने किधर चल दी। मीठा बरस नमकीन हुआ और फिर कड़वा हो गया।

अब्बा एक दिन चौखट पर औंधे मुँह गिरे और उन्हें उठाने के लिए किसी हक़ीम या डाक्टर का नुस्ख़ा न आ सका।

और हमीदा ने मीठी रोटी के लिए ज़िद करनी छोड़ दी।

और कुबरा के पैग़ाम न जाने किधर रास्ता भूल गये। जानो किसी को मालूम ही नहीं कि इस टाट के परदे के पीछे किसी की जवानी आख़िरी सिसकियाँ ले रही है और एक नयी जवानी साँप के फन की तरह उठ रही है।

मगर बी-अम्माँ का दस्तूर न टूटा। वो इंसी तरह रोज़-रोज़ दोपहर को सहदरी में रंग-बिरंगे कपडे फैलाकर गुड़ियों का खेल खेला करती हैं।

कहीं-न-कहीं से जोड़-जमा करके शबरात के महीने में क्रेप का दुपट्टा साढ़े सात रुपये में खरीद ही डाला। बात ही ऐसी थी कि बग़ैर ख़रीदे गुज़ारा न था। मँझले मामू का तार आया कि उनका बड़ा लड़का राहत पुलिस की ट्रेनिंग के सिलसिले में आ रहा है। बी-अम्माँ को तो बस जैसे एकदम घबराहट का दौरा पड़ गया। जानो चौखट पर बारात आन खड़ी हुई और उन्होंने अभी दुल्हन की माँग की अफ़शाँ भी नहीं कतरी। हौल से तो उनके छक्के छूट गये। झट अपनी

1. विद्यारम्भ की रस्म।

मुँहबोली बहन, बिन्दू की माँ, को बुला भेजा कि 'बहन, मेरा मरी का मुँह देखो जो इसी घड़ी न आओ।'

और फिर दोनों में खुसर-फुसर हुई। बीच में एक नज़र दोनों कुबरा पर भी डाल लेतीं, जो दालान में बैठी चावल फटक रही थी। वो इस कानाफूसी की ज़बान को अच्छी तरह समझती थी।

उसी वक़्त बी-अम्माँ ने कानों से चार माशा की लौंगें उतारकर मुँहबोली बहन के हवाले कीं कि जैसे-तैसे करके शाम तक तोला-भर गोकरू, छः माशा सलमा-सितारा और पाव गज़ नेफे के लिए टूल ला दें। बाहर की तरफवाला कमरा झाड़-पोंछकर तैयार किया। थोड़ा-सा चूना मँगाकर कुबरा ने अपने हाथों से कमरा पोत डाला। कमरा तो चिट्टा हो गया, मगर उसकी हथेलियों की खाल उड़ गयी। और जब वो शाम को मसाला पीसने बैठी तो चक्कर खाकर दोहरी हो गयी। सारी रात करवटें बदलते गुज़री। एक तो हथेलियों की वजह से, दूसरे सुबह की गाड़ी से राहत आ रहे थे।

"अल्लाह! मेरे अल्लाह मियाँ, अबके तो मेरी आपा का नसीबा खुल जाये। मेरे अल्लाह, मैं सौ रकात नफ़िल[1] तेरी दरगाह में पढ़ूँगी।" हमीदा ने फ़जिर की नमाज़ पढ़कर दुआ माँगी।

सुबह जब राहत भाई आये तो कुबरा पहले से ही मच्छरोंवाली कोठरी में जा छुपी थी। जब सेवइयों और पराँठों का नाश्ता करके बैठक में चले गये तो धीरे-धीरे नयी दुल्हन की तरह पैर रखती कुबरा कोठरी से निकली और जूठे बर्तन उठा लिये।

"लाओ मैं धो दूँ बी-आपा।" हमीदा ने शरारत से कहा।

"नहीं।" वो शर्म से झुक गयी।

हमीदा छेड़ती रही, बी-अम्माँ मुस्कराती रहीं और क्रेप के दुपट्टे में लप्पा टाँकती रहीं।

जिस रास्ते कान की लौंग गयी थी, उसी रास्ते फूल, पत्ता और चाँदी की पाज़ेब भी चल दी। और फिर हाथों की दो-दो चूड़ियाँ भी, जो मँझले मामू ने रँडापा उतारने पर दी थीं। रूखी-सूखी खुद खाकर आये-दिन राहत के लिए पराँठे तले जाते, कोफ्ते, भुना पुलाव महकते। खुद सूखा निवाला पानी से उतारकर वो होनेवाले दामाद को गोश्त के लच्छे खिलातीं।

1. एक प्रकार की नमाज़।

"जमाना बड़ा खराब है बेटी!" वो हमीदा को मुँह फुलाये देखकर कहा करतीं और वो सोचा करती—हम भूखे रहकर दामाद को खिला रहे हैं। बी-आपा सुबह-सवेरे उठकर जादुई मशीन की तरह जुट जाती हैं। निहार मुँह पानी का घूँट पीकर राहत के लिए पराँठे तलती हैं। दूध औटाती हैं, ताकि मोटी-सी बालाई पड़े। उसका बस नहीं था कि वो अपनी चर्बी निकालकर उन पराँठों में भर दे। और क्यों न भरे, आख़िर को वह एक दिन उसी का हो जायेगा। जो कुछ कमायेगा, उसी की हथेली पर रख देगा। फल देनेवाले पौधे को कौन नहीं सींचता? फिर जब एक दिन फूल खिलेंगे और फूलों से लदी हुई डाली झुकेगी तो ये ताना देनेवालियों के मुँह पर कैसा जूता पड़ेगा! और उस ख़याल ही से मेरी बी-आपा के चेहरे पर सुहाग खेल उठता। कानों में शहनाइयाँ बजने लगतीं और वो राहत भाई के कमरे को पलकों से झाड़तीं। उसके कपड़ों को प्यार से तह करतीं, जैसे वे कुछ उनसे कहते हों। वो उनके बदबूदार, चूहों-जैसे सड़े हुए मोजे धोतीं, बिसान्दी बनियान और नाक से लिपटे हुए रूमाल साफ़ करतीं। उसके तेल में चिपचिपाते हुए तकिए के ग़िलाफ़ पर 'स्वीट ड्रीम' काढ़तीं। पर मामला चारों कोने चौकस नहीं बैठ रहा था। राहत सुबह अण्डे-पराँठे डटकर जाता और शाम को आकर कोफ़्ते खाकर सो जाता। और बी-अम्माँ की मुँहबोली बहन हाकिमाना अन्दाज़ में खुसर-फुसर करतीं।

"बड़ा शर्मीला है बेचारा!" बी-अम्माँ तौलिये पेश करतीं।

"हाँ ये तो ठीक है, पर भई कुछ तो पता चले रंग-ढंग से, कुछ आँखों से।"

"अए नउज़, खुदा न करे मेरी लौंडिया आँखें लड़ाये, उसका आँचल भी नहीं देखा है किसी ने।" बी-अम्माँ फ़ख़्र से कहतीं।

"ए, तो परदा तुड़वाने को कौन कहे है!" बी-आपा के पके मुहाँसों को देखकर उन्हें बी-अम्माँ की दूरंदेशी की दाद देनी पड़ती।

"ऐ बहन, तुम तो सच में बहुत भोली हो। ये मैं कब कहूँ हूँ? ये छोटी निगोड़ी कौन-सी बक़रीद को काम आयेगी?" वो मेरी तरफ़ देखकर हँसतीं "अरी ओ नकचढ़ी! बहनों से कोई बातचीत, कोई हँसी-मज़ाक! ऊँह, अरी चल दिवानी!"

"ऐ, तो मैं क्या करूँ खाला?"

"राहत मियाँ से बातचीत क्यों नहीं करती?"

"भइया हमें तो शर्म आती है।"

"ए है, वो तुझे फाड़ ही तो खायेगा न ?" बी-अम्माँ चिढ़ाकर बोलतीं।

"नहीं तो, मगर ···" मैं लाजवाब हो गयी।

और फिर मिसकौट हुई। बड़ी सोच-विचार के बाद खली के कबाब बनाये गये। आज बी-आपा भी कई बार मुस्करा पड़ीं। चुपके से बोलीं, "देख हँसना नहीं, नहीं तो सारा खेल बिगड़ जायेगा।"

"नहीं हँसूँगी।" मैंने वादा किया।

"खाना खा लीजिए।" मैंने चौकी पर खाने की सेनी रखते हुए कहा। फिर जो पाटी के नीचे रखे हुए लोटे से हाथ धोते वक़्त मेरी तरफ सिर से पाँव तक देखा तो मैं भागी वहाँ से। मेरा दिल धक-धक करने लगा। अल्लाह, तोबा! क्या खूनी आँखें हैं!

"जा निगोड़ी, मरी, अरी देख तो सही, वो कैसा मुँह बनाते हैं। ऐ है, सारा मज़ा किरकिरा हो जायेगा।"

आपा-बी ने एक बार मेरी तरफ देखा। उनकी आँखों में इल्तिजा थी, लुटी हुई बारातों का गुबार था और चौथी के पुराने जोड़ों की मन्द उदासी। मैं सिर झुकाये फिर खम्भे से लगकर खड़ी हो गयी।

राहत ख़ामोश खाते रहे। मेरी तरफ़ न देखा। खली के कबाब खाते देखकर मुझे चाहिए था कि मज़ाक़ उड़ाऊँ, क़हक़हे लगाऊँ कि 'वाह जी वाह, दूल्हा भाई! खली के कबाब खा रहे हो!' मगर जानो किसी ने मेरा नरखरा दबोच लिया हो।

बी-अम्माँ ने मुझे जलकर वापस बुला लिया और मुँह-ही-मुँह में मुझे कोसने लगीं। अब मैं उनसे क्या कहती, कि वो तो मज़े से खा रहा है कमबख़्त!

"राहत भाई! कोफ्ते पसन्द आये?" बी-अम्माँ के सिखाने पर मैंने पूछा।

जवाब नदारद।

"बताइए न?"

"अरी ठीक से जाकर पूछ!" बी-अम्माँ ने टहोका दिया।

"आपने लाकर दिये और हमने खाये। मज़ेदार ही होंगे।"

"अरे वाह रे जंगली!" बी-अम्माँ से न रहा गया।

"तुम्हें पता भी न चला, क्या मज़े से खली के कबाब खा गये!"

"खली के ? अरे तो रोज़ काहे के होते हैं ? मैं तो आदी हो चला हूँ खली और भूसा खाने का।"

बी-अम्माँ का मुँह उतर गया। बी-अम्माँ की झुकी हुई पलकें ऊपर न उठ सकीं। दूसरे रोज़ बी-आपा ने रोज़ाना से दुगनी सिलाई की और फिर जब शाम को मैं खाना लेकर गयी तो बोले—

"कहिए, आज क्या लायी हैं ? आज तो लकड़ी के बुरादे की बारी है।"

"क्या हमारे यहाँ का खाना आपको पसन्द नहीं आता ?" मैंने जलकर कहा।

"ये बात नहीं, कुछ अजीब-सा मालूम होता है। कभी खली के कबाब तो कभी भूसे की तरकारी।"

मेरे तन-बदन में आग लग गयी। हम सूखी रोटी खाकर इसे हाथी की खुराक दें। घी-टपकते पराँठे ठुँसायें। मेरी बी-आपा को जुशांदा नसीब नहीं और इसे दूध मलाई निगलवायें। मैं भन्नाकर चली आयी।

बी-अम्माँ की मुँहबोली बहन का नुस्खा काम आ गया और राहत ने दिन का ज़्यादा हिस्सा घर ही में गुज़ारना शुरू कर दिया। बी-आपा तो चूल्हे में झुकी रहतीं, बी-अम्माँ चौथी के जोड़े सिया करतीं और राहत की ग़लीज़ आँखें तीर बनकर मेरे दिल में चुभा करतीं। बात-बेबात छेड़ना, खाना खिलाते वक़्त कभी पानी तो कभी नमक के बहाने। और साथ-साथ जुमलेबाज़ी ! मैं खिसियाकर बी-आपा के पास जा बैठती। जी चाहता, किसी दिन साफ कह दूँ कि किसकी बकरी और कौन डाले दाना-घास ! ऐ बी, मुझसे तुम्हारा ये बैल न नाथा जायेगा। मगर बी-आपा के उलझे हुए बालों पर चूल्हे की उड़ती हुई राख··· नहीं···मेरा कलेजा धक् से हो गया। मैंने उनके सफ़ेद बाल लट के नीचे छुपा दिये। नास जाये इस कमबख़्त नज़ले का, बेचारी के बाल पकने शुरू हो गये।

राहत ने फिर किसी बहाने से मुझे पुकारा।

"ऊँह !" मैं जल गयी। पर बी-आपा ने कटी हुई मुर्ग़ी की तरह जो पलटकर देखा तो मुझे जाना ही पड़ा।

"आप हमसे ख़फ़ा हो गयीं ?" राहत ने पानी का कटोरा लेकर मेरी कलाई पकड़ ली। मेरा दम निकल गया और भागी तो हाथ झटककर।

"क्या कह रहे थे ?" बी-आपा ने शर्मो-हया से घुटी आवाज़ में कहा। मैं चुपचाप उनका मुँह ताकने लगी।

"कह रहे थे, किसने पकाया है खाना ? वाह-वाह, जी चाहता है खाता ही चला जाऊँ। पकानेवाली के हाथ खा जाऊँ।···ओह नहीं···खा नहीं जाऊँ, बल्कि चूम लूँ।" मैंने जल्दी-जल्दी कहना शुरू किया और बी-आपा का खुरदरा, हल्दी-धनिया की बसाँद में सड़ा हुआ हाथ अपने हाथ से लगा लिया। मेरे आँसू निकल आये। 'ये हाथ!' मैंने सोचा, जो सुबह से शाम तक मसाला पीसते हैं, पानी भरते हैं, प्याज काटते हैं, बिस्तर बिछाते हैं, जूते साफ करते हैं! ये बेकस गुलाम सुबह से शाम तक जुटे ही रहते हैं। इनकी बेगार कब ख़त्म होगी ? क्या इनका कोई खरीदार न आयेगा ? क्या इन्हें कभी कोई प्यार से न चूमेगा ? क्या इनमें कभी मेहँदी न रचेगी ? क्या इनमें कभी सुहाग का इतर न बसेगा ? जी चाहा, ज़ोर से चीख़ पड़ूँ।

"और क्या कह रहे थे ?" बी-आपा के हाथ तो इतने खुरदुरे थे पर आवाज़ इतनी रसीली और मीठी थी कि अगर राहत के कान होते तो···मगर राहत के न कान थे न नाक, बस दोज़ख़-जैसा पेट था!

"और कह रहे थे, अपनी बी-आपा से कहना कि इतना काम न किया करें और जोशान्दा पिया करें।"

"चल झूठी!"

"अरे वाह, झूठे होंगे आपके वो···"

"अरे चुप मुरदार!" उन्होंने मेरा मुँह बन्द कर दिया।

'देख तो स्वेटर बुन गया है, उन्हें दे आ। पर देख, तुझे मेरी क़सम, मेरा नाम न लीजो।"

'नहीं बी-आपा! उन्हें न दो वो स्वेटर। तुम्हारी इन मुट्ठी-भर हड्डियों को स्वेटर की कितनी ज़रूरत है ?'··· मैंने कहना चाहा पर न कह सकी।

"आपा-बी, तुम खुद क्या पहनोगी ?"

"अरे मुझे क्या ज़रूरत है, चूल्हे के पास तो वैसे ही झुलसन रहती है।"

स्वेटर देखकर राहत ने अपनी एक आई-ब्रो शरारत से ऊपर तानकर कहा—

"क्या ये स्वेटर आपने बुना है ?"

"नहीं तो।"

"तो भई हम नहीं पहनेंगे।"

मेरा जी चाहा कि उसका मुँह नोच लूँ। कमीने मिट्टी के लोंदे! ये स्वेटर उन हाथों ने बुना है जो जीते-जागते गुलाम हैं। इसके एक-एक फन्दे में किसी नसीबों-जली के अरमानों की गरदनें फँसी हुई हैं। ये उन हाथों का बुना हुआ है जो नन्हें पगोड़े झुलाने के लिए बनाये गये हैं। उनको थाम लो गधे कहीं के और ये दो पतवार बड़े-से-बड़े तूफान के थपेड़ों से तुम्हारी ज़िन्दगी की नाव को बचाकर पार लगा देंगे। ये सितार की गत न बजा सकेंगे। मणीपुरी और भरतनाट्यम की मुद्रा न दिखा सकेंगे, इन्हें प्यानों पर रक्स करना नहीं सिखाया गया, इन्हें फूलों से खेलना नहीं नसीब हुआ, मगर ये हाथ तुम्हारे जिस्म पर चरबी चढ़ाने के लिए सुबह से शाम तक सिलाई करते हैं, साबुन और सोडे में डुबकियाँ लगाते हैं, चूल्हे की आँच सहते हैं। तुम्हारी ग़लाज़तें धोते हैं। इनमें कभी चूड़ियाँ नहीं खनकती हैं। इन्हें कभी किसी ने प्यार से नहीं थामा।

मगर मैं चुप रही। बी-अम्माँ कहती हैं, मेरा दिमाग़ तो मेरी नयी-नयी सहेलियों ने ख़राब कर दिया है। वो मुझे कैसी नयी-नयी बातें बताया करती हैं। कैसी डरावनी मौत की बातें, भूख और काल की बातें। धड़कते हुए दिल के एकदम चुप हो जाने की बातें।

"ये स्वेटर तो आप ही पहन लीजिए। देखिए न आपका कुरता कितना बारीक है!"

जंगली बिल्ली की तरह मैंने उसका मुँह, नाक, गिरेबान नोच डाले और अपनी पलँगड़ी पर जा गिरी। बी-आपा ने आख़िरी रोटी डालकर जल्दी-जल्दी तसले में हाथ धोये और आँचल से पोंछती मेरे पास आ बैठीं।

"वो बोले?" उनसे न रहा गया तो धड़कते हुए दिल से पूछा।

"बी-आपा, ये राहत भाई बड़े खराब आदमी हैं।" मैंने सोचा मैं आज सबकुछ बता दूँगी।

"क्यों?" वो मुस्करायी।

"मुझे अच्छे नहीं लगते ··· देखिए मेरी सारी चूड़ियाँ चूर हो गयीं!" मैंने काँपते हुए कहा।

"बड़े शरीर हैं।" उन्होंने रोमाण्टिक आवाज़ में शरमाकर कहा।

"बी-आपा ··· सुनो बी-आपा! ये राहत अच्छे आदमी नहीं।" मैंने

सुलगकर कहा।

"आज मैं बी-अम्माँ से कह दूँगी।"

"क्या हुआ?" बी-अम्माँ ने जानमाज़ बिछाते हुए कहा।

"देखिए मेरी चूड़ियाँ बी-अम्माँ!"

"राहत ने तोड़ डालीं?" बी-अम्माँ मसर्रत से चहककर बोलीं।

"हाँ!"

"खूब किया! तू उसे सताती भी तो बहुत है। ऐ है, तो दम काहे को निकल गया! बड़ी मोम की बनी हुई हो कि हाथ लगाया और पिघल गयीं!" फिर चुमकारकर बोली, "ख़ैर, तू भी चौथी में बदला ले लीजियो, कसर निकाल लियो कि याद ही करें मियाँ जी!" ये कहकर उन्होंने नियत बाँध ली। मुँहबोली बहन से फिर कान्फ्रेंस हुई और मामले को उम्मीद-अफ़ज़ा रास्ते पर गामज़न देखकर अज़हद खुशनूदी से मुस्कराया गया।

"ऐ है, तू तो बड़ी ही ठस है। ऐ हम तो अपने बहनोइयों का ख़ुदा की कसम नाक में दम कर दिया करते थे!"

और वो मुझे बहनोइयों से छेड़-छाड़ के हथकण्डे बताने लगीं कि किस तरह उन्होंने सिर्फ़ छेड़-छाड़ के तीरंदाज़ नुस्खे से उन दो ममेरी बहनों की शादी करायी, जिनकी नाव पार लगने के सारे मौके हाथ से निकल चुके थे। एक तो उनमें से हकीमजी थे। जहाँ बेचारे को लड़कियाँ-बालियाँ छेड़तीं, शरमाने लगते और शरमाते-शरमाते एख़्तेलाज के दौरे पड़ने लगते। और एक दिन मामू साहब से कह दिया कि मुझे ग़ुलामी में ले लीजिए। दूसरे वायसराय के दफ्तर में क्लर्क थे। जहाँ सुना कि बाहर आये हैं, लड़कियाँ छेड़ना शुरू कर देती थीं। कभी गिलौरियों में मिर्चें भरकर भेज दें, कभी सेवँइयों में नमक डालकर खिला दिया।

"ऐ लो, वो तो रोज़ आने लगे। आँधी आये, पानी आये, क्या मजाल जो वो न आयें। आख़िर एक दिन कहलवा ही दिया। अपने एक जान-पहचानवाले से कहा कि उनके यहाँ शादी करा दो। पूछा कि भई किससे? तो कहा, 'किसी से भी करा दो।' और खुदा झूठ न बुलाये तो बड़ी बहन की सूरत थी कि देखो तो' जैसे बैंचा चला आता है। छोटी तो बस सुब्हान अल्लाह! एक आँख पूरब तो दूसरी पच्छम। पन्द्रह तोले सोना दिया बाप ने और बड़े साहब के दफ्तर में नौकरी अलग दिलवायी।"

"हाँ भई, जिसके पास पन्द्रह तोले सोना हो और बड़े साहब के दफ्तर की नौकरी, उसे लड़का मिलते क्या देर लगती है?" बी-अम्माँ ने ठण्डी साँस भरकर कहा।

"ये बात नहीं है बहन। आजकल के लड़कों का दिल बस थाली का बैंगन होता है। जिधर झुका दो, उधर ही लुढ़क जायेगा।"

मगर राहत तो बैंगन नहीं, अच्छा-ख़ासा पहाड़ है। झुकाव देने पर कहीं मैं ही न फँस जाऊँ, मैंने सोचा। फिर मैंने आपा की तरफ देखा। वो ख़ामोश दहलीज़ पर बैठी, आटा गूँथ रही थीं और सबकुछ सुनती जा रही थीं। उनका बस चलता तो ज़मीन की छाती फाड़कर अपने कुँवारेपन की लानत समेत इसमें समा जातीं।

क्या मेरी आपा मर्द की भूखी है? नहीं, भूख के अहसास से वो पहले ही सहम चुकी हैं। मर्द का तसव्वुर इनके मन में एक उमंग बनकर नहीं उभरा, बल्कि रोटी-कपड़े का सवाल बनकर उभरा है। वो एक बेवा की छाती का बोझ हैं। इस बोझ को ढकेलना ही होगा।

मगर इशारों-कनायों के बावजूद राहत मियाँ न तो खुद मुँह से फूटे और न उनके घर ही से पैग़ाम आया। थक-हारकर बी-अम्माँ ने पैरों के तोड़े गिरवी रखकर पीर मुश्किलकुशा की नियाज़ दिला डाली। दोपहर-भर मुहल्ले-टोले की लड़कियाँ सहन में ऊधम मचाती रहीं। बी-आपा शरमाती-लजाती मच्छरोंवाली कोठरी में अपने ख़ून की आख़िरी बूँदें चुसाने को जा बैठीं। बी-अम्माँ कमजोरी में अपनी चौकी पर बैठी चौथी के जोड़े में आखिरी टाँके लगाती रहीं। आज उनके चेहरे पर मंज़िलों के निशान थे। आज मुश्किलकुशाई होगी। बस आँखों की सूइयाँ रह गयी हैं, वो भी निकल जायेंगी। आज उनकी झुर्रियों में फिर मुश्किल थरथरा रही थी। बी-आपा की सहेलियाँ उनको छेड़ रही थीं और वो ख़ून की बची-खुची बूँदों को ताव में ला रही थीं। आज कई रोज़ से उनका बुखार नहीं उतरा था। थके-हारे दिये की तरह उनका चेहरा एक बार टिमटिमाता और फिर बुझ जाता। इशारे से उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया। अपना आँचल हटाकर नियाज़ के मलीदे की तश्तरी मुझे थमा दी।

"इस पर मौलवी साहब ने दम किया है," उनकी बुखार से दहकती हुई गरम-गरम साँसें मेरे कान में लगीं।

तश्तरी लेकर मैं सोचने लगी—मौलवी साहब ने दम किया है। ये मुक़द्दस मलीदा अब राहत के पेट में झोंका जायेगा। वो तन्दूर जो छः महीने से हमारे ख़ून के छींटों से गरम रखा गया; ये दम किया हुआ मलीदा मुराद बर लायेगा। मेरे कानों में शादियाने बजने लगे। मैं भागी-भागी कोठे से बारात देखने जा रही हूँ। दूल्हे के मुँह पर लम्बा-सा सेहरा पड़ा है, जो घोड़े की अयालों को चूम रहा है···

चौथी का शहानी जोड़ा पहने, फूलों से लदी, शर्म से निढाल, आहिस्ता-आहिस्ता क़दम तोलती हुई बी-आपा चली आ रही हैं··· चौथी का ज़रतार जोड़ा झिलमिल कर रहा है। बी-अम्माँ का चेहरा फूल की तरह खिला हुआ है··· बी-आपा की हया से बोझिल निगाहें एक बार ऊपर उठती हैं। शुकराने का एक आँसू ढलककर अफ़्शाँ के ज़र्रों में कुमकुमे की तरह उलझ जाता है।

"ये सब तेरी ही मेहनत का फल है।" बी-आपा की ख़ामोशी कह रही है···

हमीदा का गला भर आया···

"जाओ न मेरी बहनो!" बी-आपा ने उसे जगा दिया और चौंककर ओढ़नी के आँचल से आँसू पोंछती ड्योढी की तरफ बढ़ी।

"ये··· ये मलीदा," उसने उछलते हुए दिल को काबू में रखते हुए कहा··· उसके पैर लरज रहे थे, जैसे वो साँप की बाँबी में घुस आयी हो। फिर पहाड़ खिसका··· और मुँह खोल दिया। वो एक क़दम पीछे हट गयी। मगर दूर कहीं बारात की शहनाइयों ने चीख लगायी, जैसे कोई दिन का गला घोंट रहा हो। काँपते हाथों से मुक़द्दस मलीदे का निवाला बनाकर उसने राहत के मुँह की तरफ बढ़ा दिया।

एक झटके से उसका हाथ पहाड़ की खोह में डूबता चला गया··· नीचे तअफ़्फ़ुन और तारीकी से अथाह ग़ार की गहराइयों में··· और एक बड़ी-सी चट्टान ने उसकी चीख को घोंटा।

नियाज़ के मलीदे की रकाबी हाथ से छूटकर लालटेन के ऊपर गिरी और लालटेन ने ज़मीन पर गिरकर दो-चार सिसकियाँ भरीं और गुल हो गयी। बाहर

आँगन में मुहल्ले की बहू-बेटियाँ मुश्किलकुशा[1] की शान में गीत गा रही थीं।

सुबह की गाड़ी से राहत मेहमाननवाज़ी का शुक्रिया अदा करता हुआ चला गया। उसकी शादी की तारीख़ तय हो चुकी थी और उसे जल्दी थी।

उसके बाद इस घर में कभी अण्डे तले न गये, पराँठे न सिके और स्वेटर न बुने। दिक़, जो एक अरसे से बी-आपा की ताक में भागी पीछे-पीछे आ रही थी, एक ही जस्त में उन्हें दबोच बैठी। और उन्होंने अपना नामुराद वजूद चुपचाप उसकी आगोश में सौंप दिया।

और फिर उसी सहदरी में साफ-सुथरी जाजम बिछायी गयी। मुहल्ले की बहू-बेटियाँ जुड़ीं। कफ़न का सफ़ेद-सफ़ेद लट्ठा मौत के आँचल की तरह बी-अम्माँ के सामने फैल गया। तहम्मुल के बोझ से उनका चेहरा लरज रहा था। बायीं आई-ब्रो फड़क रही थी। गालों की सुनसान झुर्रियाँ भायँ-भायँ कर रही थीं, जैसे उनमें लाखों अज़दहे फुंकार रहे हों।

लट्ठे की कान निकालकर उन्होंने चौपरत किया और उनके दिल में अनगिनत कैंचियाँ चल गयीं। आज उनके चेहरे पर भयानक सुकून और हरा-भरा इत्मीनान था, जैसे उन्हें पक्का यक़ीन हो कि दूसरे जोड़ों की तरह चौथी का ये जोड़ा सेंता न जाये।

एकदम सहदरी में बैठी लड़कियाँ बालियाँ मैनाओं की तरह चहकने लगीं। हमीदा माँजी को दूर झटककर उनके साथ जा मिली। लाल टूल पर सफ़ेद गज़ी का निशान! इसकी सुर्ख़ी में न जाने कितनी मासूम दुल्हनों का सुहाग रचा है और सफ़ेदी में कितनी नामुराद कुँवारियों के कफ़न की सफ़ेदी डूबकर उभरी है। और फिर सब एकदम खामोश हो गये। बी-अम्माँ ने आख़िरी टाँका भरके डोरा तोड़ लिया। दो मोटे-मोटे आँसू उनके रुई-जैसे नरम गालों पर धीरे-धीरे रेंगने लगे। उनके चेहरे की शिकनों में से रोशनी की किरनें फूट निकलीं और वो मुस्करा दीं, जैसे आज उन्हें इत्मीनान हो गया कि उनकी कुबरा का सुआ जोड़ा बनकर तैयार हो गया हो और कोई दम में शहनाइयाँ बज उठेंगी।

---

1. हज़रत अली।